 ISSN : 2583-2948

लोकासिक्त नईम के नवगीतों का सौन्दर्य

डॉ. अशोक कुमार मौर्य
मो.न. 7043910854
ypiashok@gmail.com

'नवगीत' नयी कविता के समानांतर चलने वाली वह काव्यधारा हैं, जिसे अपनी नवीन संरचनात्मक विशेषताओं के कारण नकार दिया गया था, किन्तु नयी कविता के अंत के बाद भी नवगीत एक विकसित काव्यविधा है। जहाँ नयी कविता की विशिष्टता बौद्धिकता से भावनात्मकता तथा वैश्विकता से स्थानीयता की ओर था; वहीं नवगीत का विशिष्टता भावनात्मकता से बौद्धिकता और स्थानीयता से वैश्विकता की ओर है। लोक के परिपेक्ष्य अगर कहे तो नवगीत में भारतीय मूल्यों, मान्यताओं, आचार-विचारों और जीवन पद्धतियाँ अभिव्यक्त होती है। साथ ही इसमें विभिन्न भारतीय पर्व, उत्सव और संस्कार के सूक्ष्मतम स्वरूप भी दिखाई पड़ते हैं। इसलिए कहा जाता है कि नवगीत लोकोन्मुखी काव्यधारा से विकसित लोकोसिक्त काव्यधारा है। इसमें ग्रामीण जीवनबोध और किसान-जीवन की अनुभूति मुखर है। नवगीत में बसा हुआ लोकमत लोक के अंतर्विरोधों की भी पड़ताल करता है।

नईम का जन्म 1 अप्रैल 1935 ई. में मध्यप्रदेश के दमोह जिले में हुआ था। नईम के करीबी रहे राम मेश्राम लिखते हैं 'बुन्देलखण्ड के दमोह ज़िले की एटा तहसील से 14 कि.मी. उत्तर में सोनार नदी के अंचल में स्थित ऐतिहासिक ग्राम फतेहपुर में सन् 1935 ई. में नईम आते हैं। बालक नईम बचपन के 10 साल पेड़-पौधों और गुल-बूटों को आत्मिक छुअन से ख़ुद में जज़्ब करता जाता है। वह चरिन्दे-परिन्दों से एकाकार होता, माटी के मुख़्तलिफ़ रंगों के साथ खुद को सतपुड़ा के शैल-शिखरों पर बिखेरता है।''[i]

नईम के पिता अब्दुल करीम खान एक शिक्षक थे। अपने पिता की तरह दमोह से बी.ए. और सागर विश्वविद्यालय से एम. ए. करने के बाद नईम ने भी अध्यापकी को अपना करियर बनाया। दमोह के ही एक विद्यालय में अध्यापकी करने के बाद 1961 से महाविद्यालय शिक्षा में, देवास, धार, राजगढ़, सीधी, शाजापुर के कॉलेजों में अध्यापन कार्य किया। सन् 1995 में पी.जी. कॉलेज के प्राचार्य पद से सेवानिवृत्त हुए। नईम जी के परिवार में सुपुत्री डॉ. समीरा नईम निर्वाचन आयोग में रिसोर्स पर्सन है। बेटी और पत्नी समीरा नईम को अकेला छोड़कर 09 अप्रैल, 2009 को इस दुनिया से विदा हो जाते हैं।

अपने रचनात्मक लेखन के लिए नईम को कई पुरस्कार प्राप्त हुए है। 'पथराई आँखें' के लिए मध्य प्रदेश साहित्य परिषद् का दुष्यंत पुरस्कार, बातों ही बातों पर डॉ. शम्भुनाथ सिंह शोध संस्थान द्वारा नवगीत सम्मान, मध्य प्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन भवभूति अलंकरण (2003), परिवार पुरस्कार मुम्बई (2004), दीर्घ साधना सम्मान, दुष्यंत स्मारक पाण्डुलिपि संग्रहालय, भोपाल। उत्तर प्रदेश सरकार का साहित्य भूषण सम्मान (2006)। भोपाल की कला संस्था 'मधुबन द्वारा 'श्रेष्ठ कला' आचार्य सम्मान।

नईम नवगीत के एक सशक्त रचनाकार थे। उन्होंने गीत, नवगीत और ग़ज़ल लिखें। 'पथराई आँखे(1980)' कविता, ग़ज़ल, सानेट्स तथा गीतों का संग्रह है। 'आदमक़द नहीं रहे लोग (2009)' ग़ज़ल संकलन है। इसी तरह 'ग़लत पते पर समय (2011)', 'उजाड़ में परिंदे (2011), 'लिख सकूँ तो (2003), 'पहला दिन मेरे आषाढ़ का (2014)' उनके गीत और नवगीत संग्रह हैं। नईम अपने रचनात्मक लेखन के प्रति प्रेरित होने के सम्बन्ध में कहते हैं- "मैं दूसरे रचनाकारों के बारे में तो ठीक से नही कह सकता हालाँकि बहुत सारे कवि-कथाकार ऐसे रहे हैं जिनसे अपना गाँव-देहात भले ही छूट गया हो, रोजी-रोटी और बेहतर भविष्य की तलाश में उन्हें शहरों-महानगरों का रुख करना पड़ा हो, लेकिन गाँव-देहात उनके और उनकी रचना के भीतर बराबर मौजूद रहा। चाहे ऐसा किसी नास्टेलजिया के तहत हुआ हो! असल में हमारे व्यक्तित्व की बुनियाद बहुत कुछ हमारे बचपन में ढल चुकती है। बाल मन पर अंकित छवियाँ बाद में आगे भी बनी रहती हैं। जाहिर है रचनाओं में ये छवियाँ चाहे-अनचाहे बार-बार आती हैं। मेरे साथ भी बहुत कुछ यही हुआ है। पढ़ाई के सिलसिले में गाँव-घर छूटा। एम. ए. करने सागर आ गया। और फिर कॉलेज की नौकरी करते हुए

शहरों में रहना हुआ। लेकिन भीतर जो गाँव-देहात था वह बना रहा। ऐसा अपने-आप हुआ। इसके लिए अलग से कोशिश नहीं करनी पड़ी। ये चीज़ें कोशिशें करने से होती भी नहीं खुद-ब-खुद होती हैं। इतना ज़रूर हुआ कि बचपन में जो बुन्देलखण्ड जीया था उसे बाद के सालों में मालवा में बस जाने से एक अलग तरह का खाद-पानी मिला। बतौर एक रचनाकार अपने ...गाँव में बीता बचपन आगे चलकर रचनाओं में कच्चा-पक्का माल बनता रहा। खासकर वहाँ का लोक जीवन!'ii

नईम ग्रामीण जीवन की गहरी समझ रखते थे। साथ ही उनका जीवन गाँव और शहर के परिवेशों का मिला-जुला चित्र प्रस्तुत करता है। यही कारण है कि उनके जीवन के कई आयाम दिखते हैं। एक ही रचना में कभी लोक के प्रति तो कभी शहरी बौद्धिकता के प्रति अनुराग दिखाई पड़ता है। कमलेश्वर कहते हैं कि "विलुप्त होती हमारी मौलिक संस्कृति की ऐसी मसृण और संवेदनात्मक अभिव्यक्ति हिंदी के बहुत कम कवियों ने दी है। लोक-भावना और आधुनिक बेचैनी का यह अद्भुत सम्मिश्रण है। नईम मूलतः इन्हीं बेचैनियों और भावनाओं के कवि, गीतकार हैं।"[iii] इसलिए नईम के नवगीत विभिन्नताओं से युक्त हैं। नवगीतों में अंचल विशेष की लोक संस्कृति का बड़ा सुन्दर चित्रण नईम करते हैं। उनके गीत संग्रह 'पथराई आँखे' में मालवा के लोक जीवन की अभिव्यक्ति हुई है। परिधान और आचार व्यवहार का चित्रण इस गीत में देखा जा सकता है-

"वनवासी प्यार कहीं भटक गया
मालव मन चूनर के छोर में अटक गया
आये यदि प्रीतम होगा भुनसार
पाकर की दार
जलदर्पण तेर रही रही।"[iv]

प्रकृति के सामीप्य में नईम के नवगीत अंचल की खूबसूरती को अत्यधिक उत्कंठित करते हैं। 'पुरवइया क्वार की, पहला दिन मेरे आषाढ़ का, प्रतिबिम्ब प्यार का' शीर्षक नवगीतों में प्रकृति और अंचल के संयोजनात्मक विशेषताओं का चित्रण हुआ है। प्रस्तुत 'पुरवइया क्वार की' नवगीत में भारतीय लोक जीवन का अन्यतम रूप परिलक्षित हुआ है-

"नीले जल झीलों के
बत्तखों सी तैर रही
पुरवइया क्वार की।
नेहर के अल्हड़पन
पीहर शर्माए मन
रूठ-रूठ जाती है
बेला में हार की।"[v]

नवगीत में लोकअंचल के स्वरूप में होते बदलाव के प्रति भी चिंता दिखाई पड़ती है। यहाँ के सामाजिक हालात अव्यवस्था स्थिति में गड्डमड्ड है। घर और घर का आँगन जो कभी टेढ़े-मेढ़े होते हुए भी जीवन की समतलता का आभास कराती थी, वहीं आज उसी घर और घर का आँगन पक्के, समतल और चौकोर होते हुए बेवजह रुलाते हैं। जो रिश्ते आंचलिक स्नेह की तरलता में तरल और नम्र रहते थे, वहीं आज बर्तन सा शोर करते हैं। अब उस घर में यहाँ न तो आरती की मधुर ध्वनियाँ है और न ही साँझ की रेखाएँ। कुल मिलाकर नईम ने अपने दर्द का कारक परिवर्तित सामाजिक स्थितियों को बताया है। जहाँ वे कहते हैं-

"जाने किन सायों से
सँवर गया घर का घर
चुप्पी साधे किवाड़ बूढ़े कमज़ोर।
....
जाने किन हाथों से
मंगल किरणें फूटीं
वाम हुई दाहिने दिशाएँ बरज़ोर।"[vi]

नईम लोक और शास्त्र को साथ में ले कर चलते हैं। कहीं लोक की दुश्वारियाँ हों या लोक में उत्सव का मामला। दोनों में गणितीय नाप-तोल से समस्या को देखते और रखते हैं। प्रायः शादी-विवाह में लोकाचार की अहमियत मायने रखती है। नईम इस

बात को बखूबी समझते हैं और इसलिए वे शादी-विवाह जैसे आयोजन में अनेकानेक सुविधाओं को ध्यान में रखते हैं। बारातियों के ठहरने और खान-पान की व्यवस्था करते वक्त वे अनवाँसे से मिलनेवाली रकम को आँकते हैं। उन्हें पता है कि इस चौमासे में बंजर होती ज़मीन से ज़िन्दगी मुश्किल होने वाली है। वे लिखते हैं-

"जामुन, गूलर मंडप छाये,
आओ बंदनवार सजाएँ,
गुलमोहरों अगवानी करके—
अमराई में
दें जनवासा।
अनुनय, गए दिनों के रोने,
श्रद्धा-सी आई ये होने,
अनुर्वरा घटती के भागों
करने आई है चैमासा।
नीम, अरीठे शर्मा-शर्मी,
पात-पाख हरियाई गर्मी,
गंगा तट की झूसी हो,
या गांव मालवे का रंगवासा।"[vii]

लोक में पुरवा और पछुआ हवा के बहुत मायने हैं। हम जीवन का रहन-सहन इन हवाओं से प्रभावित होते देख सकते हैं। शास्त्रों में भी इन पर कई बातें कही गयी हैं। जहाँ लोक में घाघ लिखते हैं कि "सावन बह पुरवैया भादों पछिवां जोर। हरै-बरदवा बेंचिकें कंत चलो केमोर।"[viii] वहीं शास्त्र की बात करें तो संस्कृत में हवाओं के प्रभाव के अनुसार उनके नाम रखे गये हैं, यथा "संस्कृत में वायु के पर्याय विशिष्ट गुणों पर आधारित हैं; धीरे चलनी वाली समीर या समीरण, गंध ढोने वाला गन्धवह, या गन्धवाह, जलकण से लदी गीली हवा पुषदश्व (पृशत्-बूँद) अनाज को भूसी से अलग करने वाला पवन या पवमान, खेती की प्राण मानसूनी हवा मातरिश्वा, गज़ब ढाने वाली हवा प्रभंजन, प्राण संचार करने वाली जगत्प्राण और अनिल (अन्—श्वास लेना), सब जगह जाने वाली सदागति। साहित्य में तो दक्षिण-पवन की महिमा अपरम्पार हैं, पर लोकभाषाओं में पुरवैया का ही दर्द अधिक नशीला है, बुन्देलखंड की एक प्रसिद्ध कड़ी है—गाड़ीबारे मसक दै बैल पुरवैया के बाहर ऊन आए। वैसे हिन्दुस्तान की संस्कृति के वातायन (वात के लिए घर) सदा खुले ही रहे।...हम हवादार बारादरियों में सभा करने के आदी रहे, घुटनदार कमरों की संस्कृति से परिचय हमारा नया है और शीत-तापनियन्त्रित हवा का स्पर्श भी हमारे लिए अभी अजनबी है।"[ix] नवगीतकार नईम जीवन में पुरवा और पछुआ हवाओं से प्रभावित विद्रूपताओं को लोक और शास्त्र में साथ-साथ देखते हैं। असमय पुरवा और पछुआ हवाओं के चलने और सामाजिक समस्याओं से दूभर जिन्दगी को नईम इस तरह से देखते हैं-

"पछुवा बहे
बहे पुरवैया,
ता ता थैया
ता-ता...थैया।
....
खुली आँख पर पट्टी बाँधे, कुत्ते खाएँ अंधा राँधे,
राग, रंग, ये उत्सव, मेले त्योहारों के अजब झमेले
साढ़े साती—
और अढ़ैया
शनि के मारे—
भौजी भैया।
सुबह तमाशे, शामें चिकचिक, ज़ोर-जुलुम की थापें धिकधिक,
नमक, तेल, राई की झिकझिक, लानत थेई, मलामत शिकशिक
सबसे सस्ता हुआ रुपैया,

पेंदे फूटे-हे-हे-हो-हैया
पछुवा बहे बहे पुरवैया।"[x]

बादल, बदरी का लोक और शास्त्र में विशेष महत्त्व है। लोक में आम आदमी के जीविकोपार्जन में बादल का स्वाभाविक संयोग है। बादल के आने और फिर चले जाने से लोकमानस की चित्तवृत्तियों में व्यापक बदलाव देखा जाता है। बादल बिना बरस के चले जाए तो लोक में निराशाजनक स्थितियाँ पनपने लगती हैं। बरसाती बादल के आने भर से मन मयूर होने लगता है। बरसात लोक में उर्जा का स्रोत है। शास्त्रों में बादल का वृहत्तर परिलक्षण है। हिन्दी साहित्य के आदिकाल से आधुनिक काल में बादल पर कवियों की व्यापक दृष्टि गयी है। अंग्रेजी में शेली की प्रसिद्ध कविता 'द क्लाउड', हिन्दी में पंत की 'बादल', निराला की 'बादल-राग', नागार्जुन की 'बादल को घिरते देखा है', केदारनाथ सिंह की 'बादल ओ!' मूलतः बादल केन्द्रित कविताएँ हैं। इनमें शास्त्रीय वैचारिकी होने के साथ ही लोक से निकली चेतना भी है। नवगीतकारों ने भी व्यापक रूप से बादल केन्द्रित कविताओं की रचना की है। इनकी कविताओं में 'बादल' के कई रूप-रंग और कृत्य हैं। कहीं अभिभावक जैसा है, जिससे बच्चे हठ करते हैं-

"बादल, बादल!! पानी दे।
पानी दे, गुड़-धानी दे।
ठहरे हुए नदी-नालों को
फिर से नयी रवानी दे।"[xi]

तो कहीं बादल के रौद्र रूप को देखकर डर भी जाते हैं। बादल फटने जैसी घटना इसी विभीषिका का परिचायक है। इसी कारण से अचानक नदियों में बाढ़ आती है। फिर भी डॉ. शम्भुनाथ सिंह अपने नवगीत 'बाढ़ की नदी' नदी को बेटी का दर्जा देते हैं-

"नदिया आयी है मेरे घर-आंगने!
लेकर खटिया मचिया
छप्पर छानी,
आयी देहरी-द्वारे
नदिया रानी,
चूल्हा-चक्की, बर्तन-भांड़े मांगने,
नदिया आयी है मेरे घर-आंगने।
....
बनकर सागर यह
पर्वत की बेटी,
बागों, खेतों,
खलिहानों में लेटी,
सरबस लीला इस पानी के नाग ने,
नदिया आयी है मेरे घर-आंगने।"[xii]

'प्रेम' लोक और शास्त्र दोनों का ही मुख्य विषय रहा है। नवगीतकारों ने भी दोनों ही दृष्टियों से प्रेम को देखा और समझा है। नईम अपने लोकगीतों में प्रेम के अपरिमित रूप को व्यक्त करना चाहते हैं, गढ़ना चाहते हैं। डॉ. शम्भुनाथ सिंह छायावादी प्रेम के आदर्श को प्रस्तुत करते हैं तो राजेन्द्र प्रसाद सिंह को क्रांति के रूप में देखते हैं। रमेश रंजक प्रेम की खेती करना चाहते हैं।

सन्दर्भ:-

[i] फ्लैप, राम मेश्राम, *आदमक़द नहीं रहे लोग,* मेधा बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2009

[ii] http://bizooka2009.blogspot.com/2018/06/0-0-9-2008.html

[iii]. भूमिका, कमलेश्वर. *पहला दिन मेरे आषाढ़ का,* आलेख प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2014, पृष्ठ 5

[iv]. नईम, पथराई आँखें, सन्मार्ग प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1980, पृष्ठ 61

[v]. सिंह, डॉ. शम्भुनाथ, *नवगीत दशक 1,* पराग प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1982, पृष्ठ 66

[vi] नईम, *गलत पते पर समय,* अंतिका प्रकाशन, ग़ाज़ियाबाद, संस्करण 2011, पृष्ठ 15

[vii]. नईम, *गलत पते पर समय,* अंतिका प्रकाशन, ग़ाज़ियाबाद, संस्करण 2011, पृष्ठ 42

[viii]. द्विवेदी, देवनारायण, *घाघ और भड्डरी की कहावतें,* डायमंड बुक्स, नई दिल्ली, संस्करण 2006, पृष्ठ 22

[ix]. मिश्र, विद्यानिवास, *हिन्दी की शब्द परम्परा,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2008, पृष्ठ 30-31

[x]. नईम, *गलत पते पर समय,* अंतिका प्रकाशन, ग़ाज़ियाबाद, संस्करण 2011, पृष्ठ 64

[xi]. नईम, *लिख सकूँ तो,* भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, संस्करण 2003, पृष्ठ 65

[xii]. डॉ. इन्दीवर. सं. *डॉ. शम्भुनाथ सिंह साहित्य समग्र,* के. एल. पचौरी प्रकाशन, गाजियाबाद, संस्करण 2017, पृष्ठ 671